

(81) लैंगिक न्याय का सार लैंगिक भिन्नताओं से
उपर उठकर समानता और समता है जिस
[सार्वभौमिक मानव दृष्टि] से पर्याप्त है।

उदाहरणों चित्त धारित की स्वतंत्रता पर
बत देते हैं। भारतीय संविधान की प्रस्तावना
में न्याय का प्रावधान है, साथ ही संविधान
के अनुच्छेद 14-18 में समानता तथा अनु.
19-22 में स्वतंत्रता की पर्याप्त है। अब
सवाल उठता है कि क्या समाज में लैंगिक
न्याय है? क्या समाज में महिलाओं एवं
अन्य जेंडर के व्यक्तियों को समान माना
जाता है? क्या इन लोगों को पुरुषों
के समान स्वतंत्रता है?

प्रथम प्रश्न का उत्तर
जानने से पहले यह जानना आवश्यक है कि
लैंगिक न्याय क्या है। लैंगिक न्याय को
लाभ है कि सभी लोगों को लिंग,
गैर अभिव्यक्ति, लिंग पहचान या अभिव्यक्ति
के आधार पर भेदभाव का न होना। लैंगिक
न्याय का उद्देश्य है, सभी लोगों को समान
असर, संसाधन और प्रतिनिधित्व देना।

अब, प्रथम प्रश्न है उत्तर
 जानने हेतु हमें महिलाओं एवं अन्य
 जेंडर के साथ व्यवहार से ऐसी आवश्यकता
 है। कुछ के आरंभ से लेकर वर्तमान
 तक, दुनिया के लगभग सभी समाजों में,
 महिलाओं को पुरुषों से अधीन रखा
 गया और उपादन के साधन पर पुरुषों
 का वर्चस्व रहा है। 'अन्य जेंडर' को
 तो समाज का हिस्सा ही नहीं माना
 जाता है। ऐसे में लैंगिक न्याय की
 उम्मीद करना बेमानी नहीं नहीं
 की जा सकती है।

द्वितीय प्रश्न समानता
 के मुद्दे से उठाया है। पूरी दुनिया
 में स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व के
 विचार से फैलाने वाले यूरोप में
 महिलाओं को 20वीं सदी में मतदान
 का अधिकार मिला है। भारत में
 समान रूप हेतु समान केंद्र का
 प्रावधान है लेकिन इसका विधानमंडल
 केवल संगठित क्षेत्र में होता है
 और संगठित क्षेत्र में नहीं। अप्रमत्त

३. महिलाओं की भागीदारी, 2022-23 के
आंकड़ों के अनुसार, कुल 37% हैं।
इसमें भी शहरी क्षेत्र में कुल 24% हैं
जबकि ग्रामीण क्षेत्र में 41.5%। इन आंकड़ों
से स्पष्ट की स्थिति हो सकती है कि
ग्रामीण क्षेत्र में महिलाओं की स्थिति अच्छी
है लेकिन ऐसा नहीं है। ये महिलाएं
उसी कार्य में संलग्न हैं जो घरेलू
कार्यों का विस्तार है साथ ही इन
उत्पादक हैं प्राथमिक विद्यालय में, शिक्षिका
और विद्यार्थी दोनों रूपों में, महिलाओं
का प्रतिनिधित्व हो रहा होता है लेकिन
उच्च शिक्षण संस्थानों में बड़ी संख्या
नगण्य हो जाती है। ये सभी उद्घाटन
लैंगिक भेदभाव की दर्शाते हैं।

रीयस प्रश्न स्वतंत्रता
के मुद्दे को उठाते हैं। समाज
में महिलाओं की स्वतंत्रता पर कई
तरह से पाबंदी है। संविधान का
अनुच्छेद - 21 प्राण एवं हैरिड स्वतंत्रता
के साथ-साथ अपना जीवन जारी
रखने का भी अधिकार देता है

लेकिन सामाजिक - परिवारिक दबाव
महिलाओं से यह अपेक्षाएं होने लगती
हैं। परिवार के पुरुष जिन्हें साथ
प्याह है उसी के साथ जीवन
जतीर करना पड़ता है। इस परिस्थिति
के लिए सुवर्ण संध की पंक्ति
सटीक बंदी है —

‘पढ़िये गीता
बनिये सीता
फिर इन सब के लगावलीता
किसी पुरुष की हो पाईगीता ---।’

अर्थात् महिलाएं अपने
जीवन के फैसले करने के लिए स्वतंत्र
नहीं हैं। उन्हें नए तरह के संज्ञाएं
पाने के सामाजिक बाधाएं हैं। कुछ
संज्ञा ही हाल अन्य जैसा के व्यवस्थाओं
का ही समाज में जैसा भिन्नताओं
के आधार पर फैलाव होता है।

यह भ्रमत्व अपनी
जड़ें इतनी गहरी कर चुकी हैं
कि वे सभी चीजें हमें सामान्य
ही लगती हैं। इसलिए सामाजिक

समानता और सशक्तिता में लक्ष्य
उपन्न होती है।

इन सभी समस्याओं - की
जन-विमर्श में लाने तथा इसकी समाधान
की प्रयास है। नारीवाद की उत्पत्ति हुई।
लेकिन नारीवाद अपने स्वरूप में एकलप
नहीं है। नारीवाद के कुछ घटक
महिलाओं के लिए बराबरी की मांग करती
हैं जो कुछ घटक अतिवादी स्वरूप लेते
हैं। पुरुष विरोध की ओर चली जाती
है।

पुरुष विरोध भी नैतिक आधार पर
असंभव है। ही इस रूप है। जो
लैंगिक न्याय की आवश्यकता की
कमजोर करती है। लैंगिक न्याय
लम्बी समय है जब समाज की सभी
जेंडर (स्त्री, पुरुष एवं अन्य) का समान
रूप में सशक्तिता है।

स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार,
राजनीतिक प्रतिनिधित्व, सामाजिक प्रतिष्ठा,
इत्यादि में समानता है। इन सब में

सिंघ के आधार पर कोई संभावना
न हो। यदि हम सँझा, नहीं हैं
तो यह अन्धकार को समाप्त करने
के लिए दूसरे अन्धकार को उत्पन्न
करेंगे। हाल के अटुल सुभाष-प्रकरण
के बाद नेटिजन्स के द्वारा जैडर बुद्धि
का नौवीं शी घांटा भी जारी लगी है।

स्त्री-पुरुष यह दूसरे
के बिना ही न होकर एक-दूसरे के
पूरक हैं। नारी के बिना पुरुष का
कोई स्तित्व नहीं हो सकता प्रकृत
पुरुष के बिना नारी का कोई
मूल्य नहीं। दोनों ही आपसी सहयोग
से ही विकसित समाज की नींव
रखी जा सकती है।

अतः समानता और सहसंयोजकता
के लिए लैंगिक संभावना से उभर उभर
मानव हस्ता की पहचान आवश्यक है
यही लैंगिक-धारा का सार है।

"बिना भी जगह हुआ अन्धकार वह जगह
-धारा के लिए सतरा है।" — मार्क्स बुद्धि

(3) मादिला अशास्त्रिकता (पितृसत्तावाद) और व्यक्तिगत स्वायत्तता व स्वतंत्र चुनावों के बीच तनाव को हल करने में निहित है।

ऐसा माना जाता है कि ईश्वर ने सृष्टि की रचना की, सभी जीवों को बनाया। इन जीवों में मनुष्य भी है तथा सभी मनुष्यों को समान अधिकार प्राप्त हैं जिसे प्राकृतिक अधिकार कहा जाता है। इन प्राकृतिक अधिकारों को मानवाधिकार भी कहा जाता है, इसमें व्यक्तिगत स्वायत्तता और स्वतंत्रता शामिल हैं। लेकिन मनुष्य के दो प्रमुख लिंग, स्त्री और पुरुष में दोनों को समान स्वायत्तता और स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है। इसका प्रमुख कारण है पितृसत्तावाद।

पितृसत्तावाद का शाब्दिक अर्थ है 'पिता का शासन'। यह 'पिता' अर्थात् पुरुषों का शासन होता है। जिससे ऐसी मान्यता होती है कि स्त्रियों को पुरुषों से बहुत आगे है तथा उन्हें द्वितीय श्रेणी के व्यक्ति का दर्जा प्रदान करती है। साथ ही यह ऐसी व्यवस्था

का निर्माण करती हैं जहां-उत्पादन
में लैबर विर्णयन प्रशिक्षा तब मैं
महिलाओं के साथ संभव उठती हूँ।

पितृसत्कारणी यह दोहरी
शोषणकारी व्यवस्था महिलाओं को
राजनीति, आर्थिक, सामाजिक ^{विशेष} क्षेत्रों में
बाहर उठते घरों की पहचानकारी
तब सीमित रखना चाहती हैं। अक्सर
में उदा-सूना जाता है कि माँ के
साथ के स्वार्थ की बात ही अलग
होती है। जब माँ इतना अच्छा स्वार्थ
बनती है तो फिर बड़े बड़े होटलों
और रेस्तरां में शीश पुरुष ही
व्यो होते हैं महिलाएं क्यों नहीं?
आज भारत में जितने प्रसिद्ध शीश
हैं वे पुरुष हैं। क्या घर के
बाहर जाने के बाद स्त्रियों का
यह शीशल स्थापित हो जाता है?
विल्कुल नहीं। वरन् पुरुषवादी मानचिह्नता
स्त्री-शीशल के मोर्चिकरण के बंधन
हैं।

महिलाओं- के प्रति यह भ्रम्याक
मानसिक और संस्थागत रूप से इतनी
गहरी है कि इसे जन-विपरीत देना
है कि भी महिलाओं से संबंध बना
पड़ा। इसी संबंध का परिणाम है
नारीवाद।

नारीवाद के मूल में नारी संश्लिष्टता
का भाव है किनु प्रक्रियात्मक भिन्नता
और सौहार्दिक सुविधा देना और
राज्य इसके कई संरक्षण प्रयत्न हैं
कई समूह [उदाहरण] हैं जो जनतांगिक
व्यवस्था के भीतर राजनीतिक और
राष्ट्रपति प्रक्रियाओं के माध्यम से
इसी संश्लिष्टता चाहता है। इसके लिए
अक्सर ही समझता चाहते हैं कि अस्पष्टता
से दूर होने का समाधान रचना
जा सके।

इसका समूह है कि नारीवाद
है जो आपलकूल परिवर्तन तथा
संरि, और सुविधा जैसे शब्दों
का प्रयोग करते हैं। कई बार ये

पुरुष-विरोध की स्थिति में पहुँच जाते हैं।

दोनों स्थितियों में तुलना करने पर हम उद्धारवादी नारीवाद की ज्यादा व्यवहारिता मानते हैं। क्योंकि उद्धारवादी नारीवाद मध्यमार्गी है। मध्यमार्गी विचार विशेषा दृष्ट धरित विचार होता है। गौतम बुद्ध ने भी मध्यमार्ग को अपनाकर प्रचलित व्यवस्था और नया व्यवस्था में सामंजस्य बनाने का प्रयास किया।

स्त्री-पुरुष दोनों अपना ही अंग हैं। महिला अशक्तिशाली है। दोनों में सामंजस्य आवश्यक है। क्योंकि हैउल तरीके से कोई परिवर्तन करने का प्रयास आवश्यकता की जन्म देगा। इतिहास जगह है कि जब जब व्यवस्था फैली

हैं उसका शिर महीलारें उभाड़ा
उड़ें हैं पाँव उड़ें हैं हंग पा
पहापारी।

आधुनिक उदात्तादी लोभतांमिड
व्यक्त्या तथा संशुद्ध दृष्ट्य व्यक्ति की
स्वतंत्रता धुनिकित उदने ई विष
प्रतिबद्ध हैं अतः पितृसत्तात्मक व्यवस्था
की उद उदई महिला आशासितुदना
आजनापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है।